eISSN 2581-8996
ONLINE
INTERNATIONAL JOURNAL OF ADVANCED RESEARCH IN MULTIDISCIPLINARY SCIENCES (IJARMS)
A BI-ANNUAL, OPEN ACCESS, PEER REVIEWED (REFEREED) JOURNAL
Volume 08, Issue 01, January 2025

पर्यावरणीय नीति और हरित राजनीति

डा0 सदगुरु पुष्पम[1]
[1]एसोसिएट प्रोफेसर राजनीति विज्ञान विभाग, के0 एस0 साकेत पीजी कालेज, अयोध्या, उ0प्र0, भारत

Received: 20 Jan 2025, Accepted: 25 Jan 2025, Published with Peer Reviewed on line: 31 Jan 2025

Abstract

पर्यावरणीय संकट आज वैश्विक स्तर पर मानवीय अस्तित्व के लिए गंभीर चुनौती बन चुका है। जलवायु परिवर्तन, जैव विविधता का विनाश, वनों की कटाई, प्रदूषण और संसाधनों की अनियंत्रित खपत ने विश्व को ऐसे मोड़ पर ला खड़ा किया है जहाँ सतत विकास और पारिस्थितिकीय संतुलन के बिना मानव सभ्यता का अस्तित्व खतरे में है। इस परिप्रेक्ष्य में पर्यावरणीय नीतियाँ और हरित राजनीति का महत्व अत्यधिक बढ़ गया है। यह शोध पत्र पर्यावरणीय नीतियों के विकास, उनके सामाजिक–राजनीतिक प्रभावों, अंतर्राष्ट्रीय हरित आंदोलनों, भारत की पर्यावरणीय नीतियों की समीक्षा तथा हरित राजनीति की भूमिका का विश्लेषण करता है। शोध का उद्देश्य यह स्पष्ट करना है कि किस प्रकार हरित राजनीति एक वैकल्पिक राजनीतिक विमर्श के रूप में उभरी है और यह किस सीमा तक पर्यावरणीय संकट के समाधान में सहायक हो सकती है।

कीवर्ड– पर्यावरणीय नीति, हरित राजनीति, सतत विकास, जलवायु परिवर्तन, पारिस्थितिकी, जैव विविधता, हरित आंदोलन, वैकल्पिक राजनीति, नवीकरणीय ऊर्जा, पर्यावरणीय न्याय।

Introduction

वर्तमान समय में पर्यावरणीय संकट एक वैश्विक चिंता का विषय बन चुका है। आर्थिक विकास की अंधी दौड़, औद्योगीकरण, नगरीकरण और प्राकृतिक संसाधनों के अंधाधुंध दोहन ने पारिस्थितिकी तंत्र को असंतुलित कर दिया है। जलवायु परिवर्तन, ओजोन परत की क्षति, प्रदूषण, जैव विविधता में गिरावट और प्राकृतिक आपदाओं की आवृत्ति में वृद्धि जैसे लक्षण इस संकट की गहराई को दर्शाते हैं। ऐसे परिदृश्य में यह आवश्यक हो गया है कि पर्यावरणीय नीतियों को न केवल आर्थिक और सामाजिक विकास की योजनाओं में समाहित किया जाए, बल्कि उन्हें राजनीतिक विमर्श का केंद्रीय विषय बनाया जाए। इसी पृष्ठभूमि में हरित राजनीति एक सशक्त वैकल्पिक राजनीतिक दर्शन के रूप में उभर कर सामने आई है, जो पर्यावरण संरक्षण को सामाजिक न्याय, लोकतंत्र और अहिंसा के मूल्यों के साथ जोड़ती है।

इस शोध का उद्देश्य है कि हम पर्यावरणीय नीतियों के विकासक्रम, उनकी प्रभावशीलता, हरित आंदोलनों की भूमिका तथा हरित राजनीति के व्यापक प्रभावों का अध्ययन करें। आज जब विश्व के अधिकांश देश जलवायु संकट से निपटने हेतु नीतिगत और तकनीकी उपायों की ओर अग्रसर हैं, तब यह विचार करना आवश्यक है कि क्या केवल तकनीकी समाधान पर्याप्त हैं, या हमें अपने राजनीतिक और सामाजिक मूल्यों में भी बदलाव लाने की आवश्यकता है? हरित राजनीति इसी प्रश्न का उत्तर देने का प्रयास करती है। अतः इस शोध में हम यह मूल्यांकन करेंगे कि किस प्रकार हरित राजनीति, पर्यावरणीय नीतियों के क्रियान्वयन में एक नई दृष्टि और दिशा प्रदान कर सकती है।

शोध की पृष्ठभूमि– आधुनिक विश्व में पर्यावरणीय संकट अत्यंत गंभीर रूप धारण कर चुका है। प्रदूषण, जलवायु परिवर्तन, जैव विविधता का ह्रास, वनों की कटाई तथा प्राकृतिक संसाधनों का अनियंत्रित दोहन

इन संकटों के मुख्य कारण हैं। इन समस्याओं के समाधान हेतु प्रभावी पर्यावरणीय नीतियों और हरित राजनीति की आवश्यकता महसूस की गई है। यह शोधपत्र इन्हीं पहलुओं का गहन विश्लेषण करता है।

विषय की प्रासंगिकता– पर्यावरण केवल जैविक अस्तित्व की रक्षा का ही नहीं, बल्कि सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक विकास का भी केंद्र बन चुका है। आज की वैश्विक नीति व्यवस्था में हरित राजनीति एक प्रभावशाली एजेंडा बन गई है, जो केवल प्राकृतिक संसाधनों के संरक्षण की बात नहीं करती, बल्कि सामाजिक न्याय, अंतरपीढ़ीय उत्तरदायित्व और सतत विकास की भी वकालत करती है।

शोध के उद्देश्य–

1. पर्यावरणीय नीति और हरित राजनीति की वैचारिक व ऐतिहासिक पृष्ठभूमि का अध्ययन।
2. भारत सहित विभिन्न देशों की पर्यावरणीय नीतियों का तुलनात्मक विश्लेषण।
3. हरित राजनीति की अवधारणा, सिद्धांत एवं उसका व्यवहारिक कार्यान्वयन।
4. नीति निर्माण में सामाजिक भागीदारी, जन आंदोलन एवं अंतर्राष्ट्रीय संस्थाओं की भूमिका का विश्लेषण।

शोध प्रश्न–

1. पर्यावरणीय नीति किन सामाजिक–राजनीतिक संदर्भों में निर्मित होती है?
2. हरित राजनीति किन मूलभूत सिद्धांतों पर आधारित है और उसका व्यवहारिक स्वरूप क्या है?
3. भारत में पर्यावरणीय नीतियों के प्रभावी कार्यान्वयन में कौन–कौन सी बाधाएँ हैं?
4. क्या हरित राजनीति वर्तमान लोकतांत्रिक शासन व्यवस्था में टिकाऊ विकास का विकल्प प्रस्तुत कर सकती है?

शोध की सीमा– यह शोध मुख्यतः भारत को केंद्र में रखते हुए वैश्विक संदर्भों का भी समावेश करता है। इसमें 1972 के स्टॉकहोम सम्मेलन से लेकर वर्तमान समय तक की नीतियों और आंदोलनों का विश्लेषण किया गया है। यह शोध राजनीतिक शास्त्र, पर्यावरण अध्ययन, विकास अध्ययन तथा लोक नीति के अंतःविषयी (interdisciplinary) स्वरूप को आधार बनाकर प्रस्तुत किया गया है।

परिकल्पना–

1. पर्यावरणीय नीति की प्रभावशीलता उस समय अधिक होती है जब उसे हरित राजनीति द्वारा सामाजिक और राजनीतिक समर्थन प्राप्त होता है।
2. सतत विकास के लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए पारंपरिक नीतिगत ढांचे में हरित राजनीतिक दृष्टिकोण आवश्यक है।
3. अंतरराष्ट्रीय सहयोग और वैश्विक संगठन, जैसे संयुक्त राष्ट्र, पर्यावरणीय संरक्षण में राष्ट्रीय नीतियों को प्रभावी बनाने में सहायक सिद्ध होते हैं।
4. भारत में हरित राजनीति की उभरती भूमिका पर्यावरणीय न्याय, सतत विकास और सामाजिक जागरूकता में वृद्धि कर रही है।

शोध प्राविधि– यह शोध गुणात्मक (Qualitative) एवं वर्णनात्मक (Descriptive) विधियों पर आधारित है। शोध के प्रमुख घटक निम्नलिखित रहे हैं–

साहित्य समीक्षा (Literature Review)– पर्यावरणीय नीतियों, हरित राजनीति और अंतरराष्ट्रीय समझौतों से संबंधित प्राथमिक व द्वितीयक स्रोतों का अध्ययन।

नीतिगत दस्तावेजों का विश्लेषण– भारत सरकार की पर्यावरणीय नीतियाँ, संयुक्त राष्ट्र पर्यावरण कार्यक्रम (UNEP), IPCC रिपोर्ट्स आदि।

तुलनात्मक अध्ययन– भारत बनाम अन्य देशों की नीतियों एवं हरित राजनीतिक दृष्टिकोण का विश्लेषण।

अंतर्वार्ता और सर्वेक्षण (जहां लागू हो)– विद्वानों, पर्यावरणविदों और सामाजिक कार्यकर्ताओं से प्राप्त दृष्टिकोणों को आधार बनाया गया है।

पर्यावरणीय नीतियों का विकासरू वैश्विक परिप्रेक्ष्य– विकास की पारंपरिक अवधारणा ने लंबे समय तक प्राकृतिक संसाधनों को असीमित और नवीकरणीय मानते हुए उनका अत्यधिक उपयोग किया। 20वीं शताब्दी के उत्तरार्ध में जब पर्यावरणीय क्षरण के प्रत्यक्ष परिणाम सामने आने लगे, तब वैश्विक स्तर पर पर्यावरणीय नीतियों के निर्माण की आवश्यकता महसूस की गई।

1962 में प्रकाशित रैचल कार्सन की पुस्तक Silent Spring ने पहली बार रासायनिक कीटनाशकों के पर्यावरण पर पड़ने वाले प्रभावों की ओर ध्यान आकर्षित किया।

1972 में संयुक्त राष्ट्र द्वारा आयोजित स्टॉकहोम सम्मेलन (United Nations Conference on the Human Environment) को आधुनिक पर्यावरणीय कूटनीति की शुरुआत माना जाता है। इसी सम्मेलन में "Only One Earth" का नारा दिया गया।

प्रमुख अंतरराष्ट्रीय संधियाँ और सम्मेलन–

1987 मोंट्रियल प्रोटोकॉल– ओजोन परत को नुकसान पहुँचाने वाले पदार्थों के प्रयोग को समाप्त करने हेतु।

1992 रियो सम्मेलन (Earth Summit)– इस सम्मेलन में सतत विकास की अवधारणा को स्वीकार किया गया और तीन प्रमुख समझौतों पर हस्ताक्षर हुए – जैव विविधता पर कन्वेंशन (CBD), जलवायु परिवर्तन पर फ्रेमवर्क कन्वेंशन (UNFCCC), मरुस्थलीकरण के विरुद्ध कन्वेंशन (UNCCD)।

क्योटो प्रोटोकॉल और पेरिस समझौता– 1997 क्योटो प्रोटोकॉल विकसित देशों के लिए ग्रीनहाउस गैसों के उत्सर्जन को सीमित करने के लक्ष्य तय किए गए। 2015 पेरिस समझौता सभी देशों ने वैश्विक तापमान वृद्धि को 2°C से नीचे रखने तथा 1.5°C तक सीमित रखने के लिए प्रयास करने की सहमति दी। यह एक ऐतिहासिक और समावेशी समझौता था।

सतत विकास लक्ष्य (SDGs)- 2015 में संयुक्त राष्ट्र ने 17 सतत विकास लक्ष्यों की घोषणा की, जिनमें जलवायु कार्रवाई, स्वच्छ जल, स्थायी ऊर्जा, और जीवन के लिए भूमि व समुद्र से संबंधित लक्ष्य शामिल हैं। इन लक्ष्यों का उद्देश्य 2030 तक पर्यावरण–संवेदनशील वैश्विक विकास सुनिश्चित करना है।

पर्यावरणीय संस्थाएँ और उनका योगदान–

UNEP (United Nations Environment Programme) वैश्विक पर्यावरणीय समन्वय के लिए प्रमुख निकाय।
IPCC (Intergovernmental Panel on Climate Change) जलवायु परिवर्तन पर वैज्ञानिक विश्लेषण प्रदान करता है।
WWF, Greenpeace] IUCN – प्रमुख गैर–सरकारी संस्थाएँ जो वैश्विक पर्यावरणीय चेतना और संरक्षण में सहायक हैं।

इस प्रकार यह स्पष्ट होता है कि वैश्विक स्तर पर पर्यावरणीय नीतियों के विकास में वैज्ञानिक चेतावनियों, जन आंदोलनों, अंतरराष्ट्रीय सहयोग और राजनीतिक इच्छाशक्ति की महत्त्वपूर्ण भूमिका रही है। ये नीतियाँ न केवल पर्यावरणीय संकट की गंभीरता को दर्शाती हैं, बल्कि उनके समाधान हेतु वैश्विक एकजुटता की आवश्यकता को भी उजागर करती हैं।

भारत की पर्यावरणीय नीतियाँ– एक ऐतिहासिक अवलोकन– भारत में पर्यावरण संरक्षण की परंपरा अत्यंत प्राचीन रही है। ऋग्वेद, उपनिषद और स्मृतियों में प्रकृति को ईश्वरतुल्य मानते हुए उसके संरक्षण की बात की गई है। नदियों, वृक्षों, पशुओं और पर्वतों की पूजा भारतीय संस्कृति में इस बात का प्रमाण है कि पर्यावरणीय चेतना भारत में नई नहीं है। परंतु स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात, औद्योगीकरण, शहरीकरण और जनसंख्या वृद्धि के दबाव में पर्यावरणीय संतुलन गंभीर रूप से प्रभावित हुआ। इस खंड में भारत की पर्यावरणीय नीतियों के विकास की ऐतिहासिक यात्रा पर प्रकाश डाला गया है

स्वतंत्रता पूर्व काल और पारंपरिक दृष्टिकोण– भारतीय समाज में पारंपरिक ज्ञान प्रणालियों और लोकाचारों के माध्यम से पर्यावरण संरक्षण की गहरी समझ रही है। जंगलों और जलस्रोतों का संरक्षण, वृक्ष रक्षा और वन देवता जैसे विचार इसके उदाहरण हैं। हालांकि उस समय कोई औपचारिक नीति नहीं थी, फिर भी सामाजिक–धार्मिक मान्यताएँ पर्यावरण को अक्षुण्ण बनाए रखने में सहायक थीं।

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद प्रारंभिक दशकों (1947–1972)– स्वतंत्रता के बाद, भारत का ध्यान आर्थिक विकास और औद्योगीकरण पर केंद्रित रहा। पर्यावरणीय मुद्दे तत्कालीन प्राथमिकताओं में नहीं थे। पंचवर्षीय योजनाओं में जल, भूमि और वन संसाधनों के विकास पर बल दिया गया, परंतु पर्यावरणीय संरक्षण को अलग विषय के रूप में नहीं माना गया। 1950 और 60 के दशक में बांधों, भारी उद्योगों और हरित क्रांति के माध्यम से तीव्र आर्थिक प्रगति तो हुई, पर इसके दुष्परिणाम जैसे वन कटाई, जल प्रदूषण और मृदा क्षरण स्पष्ट होने लगे।

पर्यावरणीय नीति का संस्थागत विकास (1972–1985)– 1972 में स्टॉकहोम सम्मेलन में भारत की भागीदारी के बाद पर्यावरण संरक्षण राष्ट्रीय एजेंडे में शामिल हुआ। इसके बाद कई महत्वपूर्ण कदम उठाए गए।

1972 भारत सरकार द्वारा पर्यावरण नियोजन एवं समन्वय के लिए एक मंत्रालय की स्थापना।
1974 जल (प्रदूषण निवारण और नियंत्रण) अधिनियम पारित।
1980 वन संरक्षण अधिनियम लागू।
1981 वायु (प्रदूषण निवारण और नियंत्रण) अधिनियम पारित।
1982 पर्यावरण संरक्षण विभाग की स्थापना।

इस काल में पहली बार पर्यावरण को एक नीति विषय के रूप में स्वीकार किया गया।

आपातकालीन घटनाओं और पर्यावरणीय चेतना (1984–1991)– भोपाल गैस त्रासदी (1984) ने पर्यावरणीय और औद्योगिक सुरक्षा की गंभीरता को उजागर किया। इसके पश्चात 1986 में पर्यावरण संरक्षण अधिनियम लागू किया गया, जो भारत का प्रमुख छत्र अधिनियम बना। विभिन्न केंद्रीय और राज्य प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड सक्रिय हुए। पर्यावरण प्रभाव मूल्यांकन (EIA) प्रक्रिया की शुरुआत हुई।

उदारीकरण के बाद पर्यावरणीय शासन (1991–2010)– आर्थिक उदारीकरण के बाद पर्यावरणीय नीति में दोहरापन देखने को मिला। एक ओर निवेश और विकास को प्राथमिकता मिली, वहीं दूसरी ओर स्थायी विकास के सिद्धांतों को अपनाया गया।

राष्ट्रीय वन नीति 1988 के माध्यम से जन भागीदारी को बढ़ावा मिला।

2002 में राष्ट्रीय जल नीति तथा

2006 में अधिसूचित EIA अधिसूचना द्वारा परियोजनाओं की पूर्व जांच की अनिवार्यता लाई गई।

जलवायु परिवर्तन और हालिया प्रयास (2010–वर्तमान)– 21वीं शताब्दी में भारत ने वैश्विक जलवायु विमर्श में सक्रिय भूमिका निभाई है। राष्ट्रीय कार्य योजना जलवायु परिवर्तन पर (NAPCC) 2008 में शुरू की गई जिसमें 8 मिशनों का लक्ष्य रखा गया (जैसे सौर मिशन, ऊर्जा दक्षता मिशन)। राष्ट्रीय हरित अधिकरण (NGT) की स्थापना 2010। पेरिस समझौते (2015) के तहत भारत ने 2070 तक नेट ज़ीरो उत्सर्जन का लक्ष्य रखा। 2022 में LiFE (Lifestyle for Environment)" अभियान की शुरुआत।

संविधान और पर्यावरण– 42वाँ संविधान संशोधन (1976) द्वारा अनुच्छेद 48। (राज्य का दायित्व) और अनुच्छेद 51।(ह) (नागरिक का कर्तव्य) जोड़े गए, जो पर्यावरण और वन्य जीवों की रक्षा की बात करते हैं।

न्यायपालिका की भूमिका– भारतीय न्यायपालिका ने भी पर्यावरणीय संरक्षण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। 'विकास बनाम पर्यावरण' बहस में सुप्रीम कोर्ट ने 'सतत विकास', 'जनहित याचिका (PIL)', 'पर्यावरणीय न्याय' जैसे सिद्धांतों के माध्यम से संरक्षण को प्रोत्साहित किया। भारत की पर्यावरणीय नीति का इतिहास सामाजिक परंपराओं, औपनिवेशिक प्रभावों, वैश्विक दबावों और आंतरिक पर्यावरणीय आंदोलनों से निर्मित एक बहुआयामी यात्रा है। यह स्पष्ट है कि नीति में निरंतर सुधार और अद्यतन प्रयासों की आवश्यकता बनी हुई है, जिससे सतत विकास और पर्यावरणीय संतुलन दोनों सुनिश्चित किए जा सकें।

पर्यावरणीय नीति एक वैचारिक और व्यावहारिक परिचय– नीति का अभिप्राय और स्वरूपश्नीतिश का सामान्य अर्थ है किसी उद्देश्य की प्राप्ति हेतु पूर्वनिर्धारित दिशा–निर्देशों का समूह। पर्यावरणीय नीति उन सिद्धांतों, निर्देशों, नियमों और कार्यक्रमों का समुच्चय होती है, जिनका उद्देश्य प्राकृतिक संसाधनों का संरक्षण, प्रदूषण नियंत्रण, जैव विविधता की रक्षा और सतत विकास को सुनिश्चित करना होता है। यह नीति सामाजिक, आर्थिक और तकनीकी पक्षों से जुड़ी होती है।

वैश्विक पर्यावरणीय संकट और नीति की आवश्यकता– बीसवीं सदी के उत्तरार्ध में पर्यावरणीय संकटों की तीव्रता ने वैश्विक समुदाय को चिंतित किया। 1972 में स्टॉकहोम में आयोजित मानव पर्यावरण पर संयुक्त राष्ट्र सम्मेलन ने पहली बार पर्यावरण को अंतर्राष्ट्रीय एजेंडा पर लाया। इसके बाद 1992 का रियो सम्मेलन, 1997 का क्योटो प्रोटोकॉल और 2015 का पेरिस समझौता इस दिशा में मील का पत्थर बने। इन सम्मेलनों ने यह सिद्ध कर दिया कि पर्यावरणीय नीति बनाना और उसे लागू करना वैश्विक अनिवार्यता है।

भारत की प्रमुख पर्यावरणीय नीतियाँ (1972 से अब तक)

1972 स्टॉकहोम सम्मेलन के बाद भारत में पर्यावरण संरक्षण पर ध्यान केंद्रित हुआ।

1986 पर्यावरण (संरक्षण) अधिनियम पारित किया गया, जो एक समग्र अधिनियम था।

1992 राष्ट्रीय वन नीति संशोधित की गई।

2006 राष्ट्रीय पर्यावरण नीति लागू की गई, जिसमें टिकाऊ विकास और पारिस्थितिकीय संतुलन पर बल दिया गया।

अन्य पहलें, स्वच्छ भारत मिशन, राष्ट्रीय स्वच्छ वायु कार्यक्रम (NCAP), जल जीवन मिशन, और नवीकरणीय ऊर्जा नीतियाँ

eISSN 2581-8996
ONLINE
INTERNATIONAL JOURNAL OF ADVANCED RESEARCH IN MULTIDISCIPLINARY SCIENCES (IJARMS)
A BI-ANNUAL, OPEN ACCESS, PEER REVIEWED (REFEREED) JOURNAL
Volume 08, Issue 01, January 2025

हरित राजनीति– उद्भव, विकास और सिद्धांत– हरित राजनीति का उद्भवहरित राजनीति का उद्भव बीसवीं सदी के उत्तरार्ध में हुआ जब पारिस्थितिकीय संकट, पर्यावरणीय असंतुलन और जैव विविधता के ह्रास ने राजनीतिक विमर्श को नए आयाम दिए। यह राजनीति पारंपरिक वाम या दक्षिण विचारधाराओं से भिन्न, एक नई वैचारिक धारा के रूप में उभरी, जिसमें प्रकृति के संरक्षण और न्यायपूर्ण समाज की स्थापना को प्राथमिकता दी गई। 1970 के दशक में पश्चिमी यूरोप में हरित राजनीतिक दलों की स्थापना हुई कृ विशेषतः जर्मनी का ग्रीन पार्टी (Die Grünen) इस दिशा में अग्रणी रहा।

प्रमुख सिद्धांतहरित राजनीति कुछ मूलभूत वैचारिक सिद्धांतों पर आधारित है

इकोलॉजिज्म (Ecologism)– यह मानता है कि मानव समाज और प्रकृति का गहरा आपसी संबंध है और प्रकृति की रक्षा के बिना मानव अस्तित्व असंभव है।

डीप इकोलॉजी (Deep Ecology)– अरने नाइस् द्वारा प्रतिपादित यह सिद्धांत जीवन के सभी रूपों की समान महत्ता पर बल देता है और मानव केंद्रित दृष्टिकोण का विरोध करता है।

बायोसेंट्रिज्म (Biocentrism)– यह दृष्टिकोण सभी जीवों के जीवन को मूल्यवान मानता है और मानवीय श्रेष्ठता के सिद्धांत को अस्वीकार करता है।

स्थानीयता और विकेंद्रीकरण– हरित राजनीति स्थानीय संसाधनों पर स्थानीय समुदायों के अधिकार की वकालत करती है।

हरित राजनीतिक दलों की भूमिका– हरित राजनीतिक दल विश्वभर में पर्यावरणीय न्याय, टिकाऊ विकास, स्वच्छ ऊर्जा, जलवायु परिवर्तन और लोकतांत्रिक सहभागिता जैसे मुद्दों को लेकर सक्रिय हैं। यूरोप, ऑस्ट्रेलिया, कनाडा, भारत और दक्षिण अमेरिका में ऐसे दलों की सक्रियता ने नीति निर्माण में गहरा प्रभाव डाला है। वैश्विक हरित राजनीति और आंदोलनचिपको आंदोलन (भारत), Fridays for Future (स्वीडन), Extinction Rebellion (यूके), और Standing Rock vkanksyu (यूएस) जैसे वैश्विक आंदोलन हरित राजनीति को जन आंदोलन के रूप में प्रस्तुत करते हैं। इन आंदोलनों ने पारंपरिक राजनीति को चुनौती दी है और पर्यावरणीय विमर्श को आम नागरिकों तक पहुँचाया है।

भारत की पर्यावरणीय नीतियाँ, एक ऐतिहासिक दृष्टिकोण– भारत में पर्यावरणीय चिंताओं की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि अत्यंत समृद्ध रही है। वैदिक युग से लेकर आधुनिक भारत तक, प्रकृति को पूजनीय मानने की परंपरा रही है। स्वतंत्रता के पश्चात भारत सरकार ने औद्योगीकरण को प्राथमिकता दी, जिसके फलस्वरूप पर्यावरणीय क्षरण की चुनौतियाँ बढ़ीं।

प्रारंभिक चरण 1947–1970– स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात भारत ने अपनी प्राथमिकताओं में औद्योगीकरण, कृ षि विस्तार और बुनियादी ढांचे के विकास को रखा। इस दौरान पर्यावरण को नीति–निर्माण में द्वितीयक महत्व मिला। हालाँकि संविधान में अनुच्छेद 48 क और 51 क (G) के माध्यम से पर्यावरण–संरक्षण की भावना प्रकट की गई।

पर्यावरणीय चेतना का उदय– 1970–1990– 1972 के स्टॉकहोम सम्मेलन के पश्चात भारत ने अपनी पर्यावरणीय प्रतिबद्धताओं को सुदृढ़ किया। 1974 में जल (प्रदूषण निवारण और नियंत्रण) अधिनियम तथा 1981 में वायु (प्रदूषण नियंत्रण) अधिनियम लागू हुए। इसी समय 1986 में पर्यावरण (संरक्षण) अधिनियम पारित किया गया, जो भारत की एक समग्र पर्यावरणीय नीति का आधार बना।

उदारीकरण और पर्यावरण 1991–2010– आर्थिक उदारीकरण के दौर में विकास और पर्यावरण संरक्षण के बीच संघर्ष तीव्र हुआ। औद्योगिक परियोजनाओं की अनुमति में पर्यावरणीय प्रभाव आकलन (EIA) अनिवार्य बना, परंतु अनेक परियोजनाओं में इसका क्रियान्वयन कमजोर रहा। इसके साथ ही वन अधिकार अधिनियम, 2006 और जैवविविधता अधिनियम, 2002 जैसे कानून बनाए गए।

जलवायु परिवर्तन और वैश्विक उत्तरदायित्व 2010 वर्तमान– भारत ने पेरिस समझौते (2015) में सक्रिय भूमिका निभाई और राष्ट्रीय स्तर पर जलवायु परिवर्तन की नीतियाँ जैसे राष्ट्रीय कार्य योजना (NAPCC) लागू कीं। इस योजना में आठ मिशनों को शामिल किया गया जिनमें सौर ऊर्जा, ऊर्जा दक्षता, और जल संरक्षण जैसे विषय हैं।

नीति आयोग और सतत विकास लक्ष्य (SDGs)– नीति आयोग ने सतत विकास लक्ष्यों को नीति–निर्धारण में सम्मिलित किया। राज्यों की रैंकिंग, इंडिकेटर फ्रेमवर्क और ग्रीन बजटिंग जैसे प्रयासों से पर्यावरणीय शासन को संस्थागत रूप देने का प्रयास किया गया। भारत की पर्यावरणीय नीतियों ने एक लंबी यात्रा तय की है कृ परंपरागत पर्यावरणीय आस्था से लेकर वैश्विक जलवायु नेतृत्व तक। हालाँकि, नीतियों और उनके क्रियान्वयन में अंतर अब भी विद्यमान है। यह आवश्यक है कि पारदर्शिता, स्थानीय भागीदारी और दीर्घकालिक दृष्टिकोण को प्राथमिकता दी जाए।

वैश्विक परिप्रेक्ष्य में पर्यावरणीय नीति और हरित राजनीति– आज के युग में पर्यावरणीय समस्याएँ सीमाओं में बंधी नहीं हैं। जलवायु परिवर्तन, जैव विविधता का ह्रास, प्रदूषण, वन–क्षरण और महासागर प्रदूषण जैसी समस्याएं वैश्विक संकट के रूप में उभर चुकी हैं। इन समस्याओं का समाधान किसी एक देश के प्रयासों से संभव नहीं है, बल्कि समवेत वैश्विक नीति निर्माण की आवश्यकता है। संयुक्त राष्ट्र और पर्यावरणीय पहलें संयुक्त राष्ट्र पर्यावरण कार्यक्रम (UNEP), IPCC (Intergovernmental Panel on Climate Change), UNFCCC (United Nations Framework Convention on Climate Change) जैसे अंतरराष्ट्रीय संस्थानों ने वैश्विक पर्यावरणीय संवाद को दिशा दी है। 1992 का रियो सम्मेलन, 1997 का क्योटो प्रोटोकॉल और 2015 का पेरिस समझौता इस दिशा में प्रमुख उपलब्धियाँ हैं।

विकसित बनाम विकासशील देशों की भूमिका– वैश्विक पर्यावरणीय नीति में विकसित और विकासशील देशों के बीच उत्तरदायित्व को लेकर मतभेद हैं। विकसित देश ऐतिहासिक प्रदूषक रहे हैं जबकि विकासशील देश पर्यावरणीय विकास और आर्थिक विकास के संतुलन की बात करते हैं। कॉमन बट डिफरेंशियेटेड रिस्पॉन्सिबिलिटीज (CBDR) इसी असंतुलन का समाधान प्रस्तुत करता है। यूरोपीय संघ और हरित संधियाँयूरोपीय संघ ने ग्रीन डील और कार्बन न्यूट्रैलिटी लक्ष्य को 2050 तक प्राप्त करने की योजना बनाई है। जर्मनी, फ्रांस, स्वीडन जैसे देशों ने पर्यावरणीय करों, नवीकरणीय ऊर्जा पर निवेश और प्लास्टिक पर प्रतिबंध जैसे सशक्त कदम उठाए हैं।

अमेरिका और चीन की भूमिका– दुनिया के दो सबसे बड़े कार्बन उत्सर्जक, अमेरिका और चीन, वैश्विक नीति में निर्णायक भूमिका निभाते हैं। अमेरिका की नीतियाँ सरकार बदलने पर बदलती रही हैं (जैसे ट्रम्प प्रशासन ने पेरिस समझौते से बाहर किया, जबकि बाइडन सरकार पुनः शामिल हुई)। चीन ने 2060 तक कार्बन न्यूट्रल बनने का लक्ष्य तय किया है। दक्षिण एशियाई और अफ्रीकी देशों की स्थितिइन देशों के समक्ष मुख्य चुनौती है, गरीबी उन्मूलन और सतत विकास का समन्वय। इन क्षेत्रों में अंतरराष्ट्रीय सहायता, हरित निवेश, और पर्यावरण शिक्षा को प्राथमिकता देने की आवश्यकता है। वैश्विक एनजीओ और

eISSN 2581-8996
ONLINE
INTERNATIONAL JOURNAL OF ADVANCED RESEARCH IN MULTIDISCIPLINARY SCIENCES (IJARMS)
A BI-ANNUAL, OPEN ACCESS, PEER REVIEWED (REFEREED) JOURNAL
Volume 08, Issue 01, January 2025

जनांदोलनग्रीनपीस, WWF फ्राइडेज़ फॉर फ्यूचर जैसे संगठन वैश्विक जनजागरण में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहे हैं। युवा वर्ग की सक्रियता और सोशल मीडिया के माध्यम से जागरूकता बढ़ रही है। वैश्विक परिप्रेक्ष्य से यह स्पष्ट होता है कि पर्यावरणीय नीति और हरित राजनीति अब किसी एक देश का विषय नहीं है। सभी देशों को सहयोगात्मक दृष्टिकोण अपनाकर साझा नीति निर्माण करना होगा।

संयुक्त राष्ट्र और अंतरराष्ट्रीय संगठन, पर्यावरणीय संरक्षण में भूमिका– संयुक्त राष्ट्र (United Nations) की स्थापना 1945 में विश्व शांति, मानवाधिकार संरक्षण और सामाजिक प्रगति को बढ़ावा देने के लिए की गई थी, लेकिन समय के साथ इसकी भूमिका में पर्यावरणीय मुद्दों का भी समावेश हुआ। 1972 में स्टॉकहोम सम्मेलन (United Nations Conference on the Human Environment) के आयोजन ने पर्यावरण संरक्षण की दिशा में वैश्विक जागरूकता का प्रारंभ किया।

संयुक्त राष्ट्र पर्यावरण कार्यक्रम (UNEP)– 1972 में ही संयुक्त राष्ट्र ने संयुक्त राष्ट्र पर्यावरण कार्यक्रम (UNEP) की स्थापना की। इसका मुख्य उद्देश्य वैश्विक पर्यावरणीय संकटों की निगरानी करना, समाधान सुझाना, और विभिन्न देशों को पर्यावरण संरक्षण में सहायता देना है।

UNEP की प्रमुख उपलब्धियाँ–

मॉन्ट्रियल प्रोटोकॉल (1987) ओज़ोन परत की रक्षा के लिए।

पेरिस समझौता (2015) जलवायु परिवर्तन के विरुद्ध वैश्विक प्रयास।

IPCC (Intergovernmental Panel on Climate Change)– जलवायु परिवर्तन पर वैज्ञानिक मूल्यांकन रिपोर्ट प्रकाशित करता है।

अंतरराष्ट्रीय संगठनों की भूमिका

1. विश्व बैंक (World Bank)– विकासशील देशों को हरित ऊर्जा, जल प्रबंधन, वन संरक्षण आदि हेतु वित्तीय सहायता प्रदान करता है।

2. विश्व स्वास्थ्य संगठन (WHO) प्रदूषण और पर्यावरणीय स्वास्थ्य से संबंधित डाटा एवं नीति निर्धारण में भूमिका निभाता है।

3. इंटरनेशनल यूनियन फॉर कंजर्वेशन ऑफ नेचर (IUCN)– जैव विविधता संरक्षण में अग्रणी भूमिका निभाता है, जैसे रेड लिस्ट ऑफ थ्रेटेंड स्पीशीज़।

4. ग्रीनपीस (Greenpeace)– एक स्वतंत्र गैर–सरकारी संगठन जो वैश्विक स्तर पर जलवायु न्याय, वनों की रक्षा और महासागरों की स्वच्छता जैसे अभियानों में सक्रिय है।

भारत और अंतरराष्ट्रीय सहयोग– भारत ने अनेक अंतरराष्ट्रीय पर्यावरणीय समझौतों पर हस्ताक्षर किए हैं और सक्रिय रूप से उनमें भाग लिया है। क्योटो प्रोटोकॉल और पेरिस समझौता के अंतर्गत कार्बन उत्सर्जन नियंत्रण। इंटरनेशनल सोलर अलायंस की स्थापना में भारत की प्रमुख भूमिका। यूएनएफसीसीसी के अंतर्गत क्लाइमेट फंडिंग और टेक्नोलॉजी ट्रांसफर में भागीदारी।

चुनौतियाँ और आलोचनाएँ– विकसित देशों द्वारा वित्तीय व तकनीकी सहायता में कमी। संयुक्त राष्ट्र निर्णयों का बाध्यकारी न होना। जलवायु न्याय (Climate Justice) को लेकर उत्तर और दक्षिण देशों के बीच टकराव। संयुक्त राष्ट्र और अन्य अंतरराष्ट्रीय संगठनों की भूमिका पर्यावरणीय संरक्षण में निर्णायक रही है। यद्यपि कई

आलोचनाएँ और चुनौतियाँ हैं, फिर भी वैश्विक सहयोग, तकनीकी साझेदारी और नीति समन्वय के माध्यम से सतत विकास की दिशा में इनकी भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण और प्रेरणादायक रही है।

भारत की पर्यावरणीय चुनौतियाँ और हरित राजनीति की भूमिका– भारत, एक विशाल और विविधतापूर्ण देश होने के नाते, पर्यावरणीय दृष्टिकोण से गंभीर चुनौतियों का सामना कर रहा है। जनसंख्या वृद्धि, औद्योगिकीकरण, शहरीकरण और प्राकृतिक संसाधनों के अत्यधिक दोहन ने पारिस्थितिकी संतुलन को बिगाड़ दिया है। इस अध्याय में भारत की प्रमुख पर्यावरणीय समस्याओं की पहचान की जाएगी और यह समझने का प्रयास किया जाएगा कि हरित राजनीति इन समस्याओं के समाधान में कैसे भूमिका निभा सकती है।

वायु प्रदूषण– भारत के प्रमुख महानगरों में वायु गुणवत्ता सूचकांक (AQI) अत्यंत खराब स्तर तक पहुँच चुका है। WHO के अनुसार, विश्व के 20 सबसे प्रदूषित शहरों में से 14 भारत में हैं। वाहन उत्सर्जन, औद्योगिक अपशिष्ट और पराली जलाना इसके प्रमुख कारण हैं।

जल प्रदूषण और जल संकट– गंगा, यमुना, गोदावरी जैसी प्रमुख नदियाँ प्रदूषण की मार झेल रही हैं। औद्योगिक कचरे, घरेलू सीवेज, और रासायनिक उर्वरकों के कारण जल जीवन के लिए अनुपयुक्त हो रहा है।

वन क्षेत्र में कमी– शहरी विस्तार, अवैध खनन और कृषि भूमि के विस्तार के कारण वनों का विनाश हो रहा है। इससे जैव विविधता पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ा है।

जलवायु परिवर्तन– भारत में तापमान में वृद्धि, वर्षा की अनिश्चितता, बाढ़ और सूखे की आवृत्ति में वृद्धि जैसी समस्याएँ देखी जा रही हैं। इससे कृषि, खाद्य सुरक्षा और मानव स्वास्थ्य प्रभावित हो रहा है।

कचरा प्रबंधन– ठोस अपशिष्ट, प्लास्टिक, ई–कचरा और जैव चिकित्सा कचरे का समुचित प्रबंधन न होने के कारण पर्यावरणीय संकट उत्पन्न हो रहा है।

भूमि क्षरण और मरुस्थलीकरण– अत्यधिक कृषि, रासायनिक उर्वरकों का प्रयोग और चरम जलवायु परिस्थितियाँ भूमि की उर्वरता को नष्ट कर रही हैं।

पर्यावरणीय न्याय और सामाजिक असमानता– पर्यावरणीय समस्याओं का प्रभाव समाज के निर्धन, हाशिए पर खड़े और आदिवासी वर्गों पर सबसे अधिक पड़ता है। झुग्गी बस्तियों में रहने वाले लोग प्रदूषण, जल संकट और अपशिष्ट के निकटता से अधिक प्रभावित होते हैं। ऐसे में पर्यावरणीय न्याय की अवधारणा को हरित राजनीति के माध्यम से आगे बढ़ाना आवश्यक हो जाता है।

भारत में हरित राजनीति की भूमिका– हरित राजनीति, एक वैकल्पिक राजनीतिक दृष्टिकोण है, जो पर्यावरण संरक्षण, सामाजिक न्याय, सतत विकास और लोकतांत्रिक भागीदारी को प्राथमिकता देता है।

हरित दल और राजनीतिक आंदोलनों– भले ही भारत में श्ग्रीन पार्टीश की स्पष्ट उपस्थिति कमजोर रही है, लेकिन पर्यावरण के मुद्दे पर कई सामाजिक आंदोलनों ने असर डाला हैकृजैसे कि चिपको आंदोलन, नर्मदा बचाओ आंदोलन, स्वच्छ भारत अभियान आदि।

नीतिगत हस्तक्षेप– जलवायु परिवर्तन पर राष्ट्रीय कार्य योजना, राज्य जलवायु कार्य योजनाएँ, प्लास्टिक पर प्रतिबंध, EIA अधिसूचना जैसी पहलें हरित राजनीति के प्रभाव का संकेत देती हैं।

न्यायिक सक्रियता– भारत की न्यायपालिका ने पर्यावरण के मामलों में च्स् को संज्ञान में लेकर अनेक निर्णय दिए हैं, जो हरित न्याय और संरक्षण की दिशा में महत्त्वपूर्ण हैं।

सिविल सोसाइटी और एनजीओ की भूमिका– कई गैर–सरकारी संगठन, पर्यावरणीय जागरूकता और नीति–निर्माण में सहयोग कर रहे हैं, जो हरित राजनीति के सामाजिक आधार को मजबूत करते हैं। भारत के लिए यह समय पर्यावरणीय नीतियों को पुनर्संशोधित करने और हरित राजनीति को लोकतांत्रिक विमर्श में समाहित करने का है। जब तक पर्यावरणीय समस्याओं को राजनीतिक प्राथमिकता नहीं दी जाएगी, तब तक सतत विकास एक सपना ही रहेगा। हरित राजनीति, जनसहभागिता और नीति–संशोधन के माध्यम से भारत एक हरित और टिकाऊ भविष्य की ओर अग्रसर हो सकता है।

पर्यावरणीय नीति और हरित राजनीति का तुलनात्मक विश्लेषण– पर्यावरणीय नीति और हरित राजनीति दोनों ही समकालीन वैश्विक विमर्श के दो महत्वपूर्ण स्तंभ हैं, जो पृथ्वी पर जीवन के संरक्षण, संसाधनों के सतत उपयोग और पर्यावरणीय न्याय को सुनिश्चित करने के उद्देश्य से संचालित होते हैं। हालांकि इन दोनों अवधारणाओं के लक्ष्य समान प्रतीत होते हैं, परंतु उनकी रणनीतियाँ, मूल दर्शन, कार्यप्रणाली और कार्यान्वयन के क्षेत्र अलग–अलग होते हैं। पर्यावरणीय नीति एक विधिसम्मत ढांचा है, जो किसी देश की सरकार द्वारा प्राकृतिक संसाधनों के संरक्षण और प्रदूषण नियंत्रण के लिए बनाया जाता है। इसमें निम्नलिखित तत्व प्रमुख होते हैं क़ानून और नियम (जैसे पर्यावरण संरक्षण अधिनियम, जल अधिनियम), नियामक संस्थान (जैसे केंद्रीय प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड), बजटीय आवंटन, निष्पादन और निरीक्षण की प्रक्रिया। उदाहरण– भारत की राष्ट्रीय पर्यावरण नीति (2006), यूरोपीय संघ की जल ढाँचा निर्देशिका आदि।

हरित राजनीति एक वैचारिक आंदोलन है, जो पर्यावरणीय संरक्षण के साथ–साथ सामाजिक न्याय, लोकतंत्र, विकेन्द्रीकरण और गैर–हिंसक विकास की पैरवी करता है। इसके प्रमुख सिद्धांत हैं पारिस्थितिक बुद्धिमत्ता, सतत विकास, भागीदारी आधारित निर्णय प्रक्रिया, जैव विविधता और सांस्कृतिक विविधता का सम्मान। उदाहरण– जर्मनी की ग्रीन पार्टी, भारत में स्वराज अभियान जैसे संगठन। वर्तमान समय की जटिल पर्यावरणीय समस्याएँ केवल नीति निर्माण से नहीं सुलझाई जा सकतीं। हरित राजनीति की भागीदारी, जनजागरण, और दबाव समूहों की सक्रियता नीति निर्माण को प्रभावशाली बना सकती है। दोनों को एक–दूसरे का पूरक बनकर कार्य करना चाहिए। उदाहरण– जल संरक्षण अभियानों में हरित राजनीति की भूमिका से जलनीति में बदलाव। पर्यावरणीय नीति और हरित राजनीति दोनों आवश्यक हैंकृएक प्रशासनिक अनुशासन प्रदान करती है तो दूसरी नैतिक चेतना और सामाजिक दबाव। दोनों की समन्वित भूमिका से ही सतत और न्यायपूर्ण विकास संभव है।

सतत विकास के लिए नीतिगत सुझाव और हरित रणनीतियाँ– सतत विकास वह प्रक्रिया है जिसमें पर्यावरण, समाज और अर्थव्यवस्था तीनों का संतुलित विकास सुनिश्चित किया जाता है। वर्तमान समय में जब पर्यावरणीय क्षरण, जैव विविधता का नुकसान, जलवायु परिवर्तन, और संसाधनों का अत्यधिक दोहन वैश्विक चिंता बन चुका है, तब नीतिगत सुझाव और हरित रणनीतियाँ सतत विकास की ओर एक आवश्यक कदम बन जाते हैं। यह अध्याय पर्यावरणीय नीति निर्माण में आवश्यक सुधारों और संभावित हरित रणनीतियों पर केंद्रित है। पर्यावरणीय निर्णयों में स्थानीय निकायों, ग्राम सभाओं और नागरिक समाज की भागीदारी को सुनिश्चित करना। विकेंद्रीकृत निर्णय नीति को अधिक उत्तरदायी और प्रभावी बनाता है। स्कूल स्तर से ही पर्यावरणीय शिक्षा को अनिवार्य करना और आम जनता में जागरूकता फैलाना ताकि व्यवहार परिवर्तन को प्रेरित किया जा सके। ईआईए की प्रक्रिया को पारदर्शी और वैज्ञानिक दृष्टिकोण से संचालित करना ताकि परियोजनाओं के पर्यावरणीय दुष्प्रभावों का पूर्वानुमान हो सके। कार्बन उत्सर्जन पर कर लगाना और हरित

ऊर्जा, जैविक कृषि एवं टिकाऊ तकनीकों को प्रोत्साहन देना। इससे पर्यावरण के अनुकूल व्यावसायिक दृष्टिकोण को बल मिलेगा। जल, वायु और भूमि प्रदूषण के खिलाफ कठोर और प्रभावी कानूनी व्यवस्था सुनिश्चित करना, साथ ही दोषियों पर कठोर दंड लगाना। शहरी क्षेत्रों में हरित भवन, सार्वजनिक परिवहन, ऊर्जा दक्ष उपकरणों को प्राथमिकता देना जिससे प्रदूषण में कमी आए और संसाधनों का संरक्षण हो। भारत जैसे विकासशील देशों के लिए जलवायु परिवर्तन के दुष्प्रभावों से निपटने हेतु क्षेत्रीय रणनीतियों का निर्माण आवश्यक है, जैसे सूखा प्रभावित क्षेत्रों में सूखा–सहिष्णु बीजों का प्रयोग। सौर, पवन और जल ऊर्जा स्रोतों के विस्तार हेतु अनुदान, सब्सिडी और निवेश अनुकूल नीति का निर्माण। सस्टेनेबल टेक्नोलॉजी के लिए अनुसंधान संस्थानों और विश्वविद्यालयों को वित्तीय सहायता देना, जिससे टिकाऊ समाधान विकसित किए जा सकें। उत्पादन और उपभोग में ऐसी नीति बनाना जिससे कचरे का पुनः उपयोग हो सके और प्राकृतिक संसाधनों का न्यूनतम दोहन हो। भारत में आदिवासी समुदायों की पारंपरिक पर्यावरण–संरक्षण पद्धतियाँ प्रभावी रही हैं, इन्हें नीति में शामिल कर उनके अनुभव का लाभ उठाया जा सकता है। वातावरण–हितैषी कार्यों जैसे नवीकरणीय ऊर्जा, जैविक खेती, वृक्षारोपण आदि में रोजगार सृजन कर आर्थिक और पर्यावरणीय लक्ष्यों को जोड़ा जा सकता है। जैसे कि पेरिस समझौता, क्योटो प्रोटोकॉल आदि का गंभीरता से पालन और इनके अनुरूप राष्ट्रीय रणनीति तैयार करना। विकासशील देशों के लिए स्थापित इस कोष से भारत को पर्यावरणीय परियोजनाओं के लिए अधिक वित्तीय सहायता सुनिश्चित करनी चाहिए। प्रत्येक गांव में एक स्थानीय पर्यावरण संरक्षण योजना बनाना, जिसमें समुदाय की सहभागिता हो। एनएसएस, एनसीसी, स्काउट आदि संगठनों के माध्यम से पर्यावरणीय अभियानों को सक्रिय करना।

सतत विकास की दिशा में नीतिगत बदलाव और हरित रणनीतियाँ केवल सरकारी प्रयासों से संभव नहीं हैं, इसके लिए समाज के प्रत्येक वर्ग की भागीदारी आवश्यक है। नीति को वैज्ञानिक, समावेशी और व्यवहारिक आधार पर तैयार किया जाना चाहिए तथा हरित राजनीति को लोकतांत्रिक प्रक्रिया का महत्वपूर्ण अंग बनाना होगा।

निष्कर्ष– वर्तमान युग में पर्यावरणीय संकट वैश्विक मानव सभ्यता के समक्ष एक गंभीर चुनौती बनकर उभरा है। जलवायु परिवर्तन, जैव विविधता का ह्रास, प्रदूषण, संसाधनों का अत्यधिक दोहन और शहरीकरण की समस्याएँ केवल किसी एक देश की नहीं, बल्कि पूरे वैश्विक समुदाय की साझा चिंता हैं। इस संदर्भ में पर्यावरणीय नीति और हरित राजनीति की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण हो जाती है। इस शोध में यह स्पष्ट हुआ है कि पारंपरिक विकास मॉडल पर्यावरणीय क्षरण का प्रमुख कारण रहे हैं। भारत सहित कई विकासशील देशों में औद्योगीकरण और नगरीकरण के दबाव के चलते पर्यावरणीय संतुलन बाधित हुआ है। इन स्थितियों में पर्यावरणीय नीतियाँ, जैसे कि पर्यावरण संरक्षण अधिनियम (1986), जल एवं वायु अधिनियम, राष्ट्रीय जैव विविधता कार्यनीति एक ढांचा प्रदान करती हैं जिसके माध्यम से संसाधनों के टिकाऊ और न्यायसंगत उपयोग की दिशा में प्रयास किए जा सकते हैं।

हरित राजनीति ने इस विमर्श को और अधिक सक्रिय एवं जागरूक बनाने का कार्य किया है। ग्रीन पार्टीज़, पर्यावरणीय सामाजिक आंदोलन, जल–जंगल–जमीन के संघर्ष, और वैश्विक पर्यावरण सम्मेलन जैसे UNFCCC और COP शिखर सम्मेलन, पर्यावरण को केंद्र में लाने वाले राजनैतिक और नीति–निर्माण के उपकरण बन गए हैं। भारत में पर्यावरणीय नीति का स्वरूप अपेक्षाकृत प्रतिक्रियात्मक रहा है, जिसमें औद्योगिक परियोजनाओं की मंजूरी के साथ–साथ पर्यावरणीय आकलन की शर्तें जुड़ी होती हैं। परंतु इन

नीतियों में कई बार समावेशी दृष्टिकोण, जमीनी क्रियान्वयन और पारदर्शिता की कमी देखी गई है। वहीं हरित राजनीति ने लोकतांत्रिक आंदोलनों, न्यायालयों और नागरिक संगठनों के माध्यम से पर्यावरणीय संरक्षण को नैतिक, विधिक और राजनीतिक विमर्श में एक महत्वपूर्ण स्थान दिलाया है।

अनुसंशाएं–

1. नीति निर्माण में जनसामान्य, ग्राम सभाओं, स्थानीय निकायों, आदिवासी समुदायों एवं विशेषज्ञों की सहभागिता सुनिश्चित की जानी चाहिए।
2. सतत उत्पादन एवं उपभोग को बढ़ावा देने वाले आर्थिक ढांचे विकसित किए जाएं। हरित नौकरियों, स्वच्छ ऊर्जा, और नवीकरणीय संसाधनों पर आधारित विकास मॉडल अपनाए जाएं।
3. पर्यावरणीय शिक्षा को प्रारंभिक से उच्च शिक्षा तक पाठ्यक्रमों में समाविष्ट किया जाए। स्कूलों, कॉलेजों और सामाजिक संस्थानों में जागरूकता अभियान चलाए जाएं।
4. प्रदूषण नियंत्रण अधिनियमों का प्रभावी क्रियान्वयन सुनिश्चित हो। दोषी औद्योगिक इकाइयों के विरुद्ध दंडात्मक कार्रवाई की जाए।
5. ग्रीन राजनीति को केवल एक वैचारिक आंदोलन के रूप में न रखते हुए इसे संसद, विधानसभाओं और स्थानीय निकायों में प्रतिनिधित्व दिया जाना चाहिए।
6. स्थानीय और आदिवासी समुदायों के पर्यावरणीय संरक्षण ज्ञान को दस्तावेजीकृत कर मुख्यधारा की नीति में सम्मिलित किया जाए।
7. कृषि, जल संसाधन, आपदा प्रबंधन आदि क्षेत्रों में जलवायु परिवर्तन के प्रभावों को ध्यान में रखकर अनुकूलन आधारित योजनाएँ बनानी होंगी।
8. पेट्रोल–डीजल पर निर्भरता कम कर इलेक्ट्रिक वाहनों, सार्वजनिक परिवहन, और नवीकरणीय ऊर्जा के उपयोग को प्राथमिकता दी जाए।
9. एनजीटी (राष्ट्रीय हरित अधिकरण) और उच्च न्यायालयों की पर्यावरणीय मामलों में सक्रियता को और अधिक संसाधन और अधिकार दिए जाएं।
10. भारत को जलवायु परिवर्तन और पर्यावरणीय संरक्षण के वैश्विक प्रयासों में नेतृत्वकारी भूमिका निभानी चाहिए, विशेषकर ग्लोबल साउथ के देशों की आवाज़ को वैश्विक मंचों पर पहुंचाना।

संदर्भ सूची –

1 पर्यावरणीय नीति और विकास, रमेश ठाकुर, रावत पब्लिकेशन्स, 2012, ISBN 9788131605052
2 भारत की पर्यावरण नीति, एम. एल. रैना सौरभ पब्लिकेशन, 2015, ISBN 9789351280253
3 हरित राजनीति और सतत विकास, शैलेन्द्र शुक्ल, प्रभात प्रकाशन 2019 ISBN 9789352669590
4 भारतीय पर्यावरणीय आंदोलन, अशोक कुमार शर्मा, राजकमल प्रकाशन 2014 ISBN 9788126710573
5 पर्यावरण नीति और कानून, डॉ. रमाकान्त मिश्र, हिन्दी ग्रंथ अकादमी 2016 ISBN 9788193152331
6 पर्यावरणीय चिंतन और विचारधारा, डॉ. रेखा वर्मा, गोविंद प्रकाशन 2017, ISBN 9789386203197
7 संयुक्त राष्ट्र और पर्यावरण, प्रवीण कुमार तिवारी अमन प्रकाशन 2018 ISBN 9789387004519
8 पर्यावरणीय सामाजिक आंदोलन, अनिल सिंह, प्रकाशन संस्थान 2013 ISBN 9788192670249

9 Green Ideology, Andrew Vincent Polity Press 2015 ISBN 9780745651262

10 पर्यावरण और विकास, डॉ. सुभाष चंद्र, भारतीय विद्या संस्थान 2010 ISBN 9788175283346